❍ Year : 2 ❍ Issue : 7 ❍ March 2018 ❍ ISSN : 2456-0898

GLOBAL THOUGHT

ग्लोबल थॉट

(MULTI DISCIPLINE MULTI LANGUAGE RESEARCH JOURNAL)

(An International Refereed Quarterly Research Journal)

(A Scholarly Peer Reviewed Journal)

Special Note :

Anti national thoughts are not acceptable.

Patron :

Prof. M.M. Agrawal

(Former Dean, Arts Faculty & H.O.D. Sanskrit, University of Delhi, Delhi)

Prof. D.S. Chauhan

(Former H.O.D. Sanskrit, Magadh University, Bodhgaya, Bihar)

स्वामी/मुद्रक/प्रकाशक रूपेश कुमार चौहान द्वारा 47, ए-3 ब्लॉक, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, (नजदीक संकट मोचन मंदिर), पी.एस. नजफगढ़, दिल्ली से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4 ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली में मुद्रित।

सम्पादक-रूपेश कुमार चौहान

Ph. 09555222747, 9267944100, 9555666907

अनुक्रमणिका

Editorial ---------- 8

भारत में नौकरशाही का विकास 9
कुमार प्रशांत

रघुवीर सहाय की कविता में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना 12
डॉ. प्रमोद कुमार द्विवेदी

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी-चेतना 16
डॉ. सुनीता खुराना

The Impact of Music on the positivity and well being of mankind ----------19
Dr. Neeta Mathur

युद्ध की विभीषिका और अपरिहार्यता के मध्य कवि दिनकर 21
डॉ. अनिल राय

पुष्टिमार्गीय पद-गान में रस एवं भावाभिव्यक्ति 26
डॉ. नीता माथुर

Al-Shahrastani's Perception of Hindu Religious Systems ----------28
Dr. Manisha S. Agnihotri

अलंकार शास्त्र का ऐतिहासिक विकास 33
डॉ. शंकर नाथ तिवारी

भारतीय पारम्परिक कलाएँ और वर्तमान स्त्री-स्वावलम्बन 40
डॉ. अनिल राय

Redefining the identity of Untouchables through the vision of Dr. B.R. Ambedkar ----45
Ruchika Singh

नेताजी : एक स्वाधीन आत्मा 48
डॉ. मीना शर्मा

वाल्मीकि रामायण में छलित योग 51
डॉ. अनीता शर्मा

Impact of Globalisation on Women in India ----------56
Dr. Vandana Tripathi / Mrs. Geetanjali Kumar

नाज़ी जर्मनी और महिला प्रश्न : इतिहास पलटने का प्रयास 61
डॉ. मृदुला झा

दलित साहित्य का धार्मिक-दर्शन 65
डॉ. अश्वनी कुमार

Rural Road Connectivity in India: A bold policy initiative towards improving the quality of life ----------70
Dr. Pooja Paswan

Honour Killings : A Study in the Culture of Inhumanity ----------80
Dr. Pratibha

हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में नागरी प्रचारिणी पत्रिका का योगदान (आरंभिक पाँच वर्षों के संदर्भ में) 86
डॉ. प्रमोद कुमार द्विवेदी

नरेश मेहता की काव्यदृष्टि और दूसरा सप्तक ... 90
डॉ. चित्रा सिंह

Sustainable Development of India: Challenges and the way forward ----------98
Kumar Prashant

प्रेमचंद के साहित्य में औद्योगिकीकरण 102
डॉ. कविता राजन

Tribal Identity And Movements In Santhal Pargana Region ---------- 109
Kumari Khusboo

त्यागपत्र और उसके अज्ञेय कृत अनुवाद का तुलनात्मक अध्ययन 113
डॉ. विकेश कुमार मीना

डॉ. अनिल राय

भारतीय पारम्परिक कलाएँ और वर्तमान स्त्री-स्वावलम्बन

व्यापक अर्थ में यदि 'कला' को पारिभाषित किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि यह शिवत्व की प्राप्ति के लिए सत्य की सुन्दर अभिव्यक्ति है। मानव जीवन एवं संस्कृति के विकास में कला की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि उस युग के समाज में कला, साहित्य एवं संगीत को लगभग एक समान प्रतिष्ठा प्राप्त थी। महान संस्कृत नीतिकार भर्तृहरि द्वारा 'नीति-सार' में कहा गया है कि 'साहित्य संगीत कला विहीनः, साक्षात पशु पुच्छ विषाणहीनः।' अर्थात् साहित्य, संगीत और कला से हीन व्यक्ति बिना पूँछ और बिना सींग वाले पशु के समान है। वस्तुतः कला के बिना किसी सभ्य व सुसंस्कृत समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐतिहासिक साक्ष्यों की दृष्टि में प्राचीन भारत की कलाएँ भले ही धार्मिक उद्देश्य से विकसित हुई हों किन्तु इन कलाओं में इहलौकिकता और सांसारिकता का अभाव नहीं है। प्रसिद्ध इतिहासकार ए.एल. बाशम 'अद्भुत भारत' में कहते हैं कि-''प्राचीन भारत की कला उसके धार्मिक साहित्य से विलक्षण रूप से विभिन्न है। हमारे विचार में भारतीय कला की सामान्य प्रेरणा परमात्मा की खोज में उतनी नहीं है जितनी कि कलाकार द्वारा प्राप्त संसार के आनन्द में, ऐन्द्रिक चेतन शक्ति में तथा पृथ्वी पर जीवित प्राणियों के विकास के समान नियमित और चेतन शक्तियुक्त विकास और गति की भावना में है।''[1] यही कारण है कि ये आज तक उपयोगी और प्रासंगिक बनी हुई हैं। प्राचीन काल में गुरुकुलों में अन्य विषयों के साथ-साथ कलाओं की शिक्षा भी लगभग अनिवार्य थी। रामायण, महाभारत, वेद-पुराण आदि ग्रंथ भी इस बात की पुष्टि करते हैं। महाभारत की कथा में 'काशी खण्ड' में शुक्राचार्य का उल्लेख आया है। ऐसा माना जाता है कि शुक्राचार्य ने लगभग दो सौ श्लोकों वाले एक ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रंथ कौटिल्य के अर्थशास्त्र की तरह ही राजनीति के व्यावहारिक ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। शुक्राचार्य ने इसके चौथे अध्याय में कलाओं का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ उनके द्वारा कहा गया है कि वैसे तो कलाएँ अनन्त हैं, किंतु उनमें चौंसठ मुख्य हैं। शुक्राचार्य इस अध्याय में कला को व्याख्यायित भी करते हैं और कहते हैं कि जिसे एक मूक व्यक्ति भी प्रस्तुत कर सके वह कला है। उनके द्वारा निर्दिष्ट जिन चौंसठ कलाओं की चर्चा की गयी है उनमें चौबीस कर्माश्रया, बीस द्यूताश्रया, सोलह शायनोपचारिका और चार उत्तर कलाएँ हैं। इनकी असंख्य अवान्तर कलाएँ भी हैं जिन्हें लेकर कुल संख्या लगभग पाँच सौ अठारह हो जाती है।

शुक्राचार्य का मानना था कि कलाओं के नाम में भिन्नता से कोई अन्तर नहीं पड़ता है बल्कि क्रिया की भिन्नता ही कलाओं में भेद करती है। उन्होंने जिस प्राचीनतम कला की चर्चा सबसे पहले और प्रमुखता से की है वह है नृत्यकला। हाव-भाव के साथ शरीर की लयात्मक गति को शुक्राचार्य ने नृत्य कहा है। नृत्य भी दो प्रकार के माने गये हैं-एक नाटय व दूसरा अनाटय। किसी की कृति अथवा क्रिया का अनुकरण नाटय एवं जहाँ अनुकरण की स्थिति न हो वहाँ अनाटय कला होती है। इतिहासकार ए. एल बाशम प्राचीन नृत्य एवं नाटय के अन्तःसम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-''नृत्य का नाटक से घनिष्ठ

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2456-0898

संबंध था; दोनों एक ही शब्द के रूप हैं। 'नाटय' शब्द प्राकृत भाषा का है। नृत्य और नाट्य एक ही कला अर्थात् अभिनय के रूप हैं जिसमें अष्ट आवेगों का प्रदर्शन होता है।"[2] शिव का 'ताण्डव' नृत्य सृष्टि का प्राचीनतम नृत्य माना जाता है। आधुनिक नृत्य की प्रसिद्ध विधा 'कत्थक' का मूल स्रोत ताण्डव ही है। शिव का एक नाम 'नटराज' भी है तथा 'नट' का एक अर्थ कलाकार भी होता है। भारतीय नाटयकला केवल मनोरंजन हेतु ही विकसित नहीं हुई है बल्कि इसका गहरा संबंध लोकव्यवहार से है। भरतमुनि के अनुसार ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग अथवा कार्य नहीं है जो नाटक में न मिले। नाटक में सभी शास्त्रों और सभी कलाओं का एक साथ समावेश है, इसीलिए उन्होंने इसकी रचना की। प्राचीन काल में कलाओं को जीवन में अत्यधिक उपयोगी माना जाता था इसीलिए नृत्यकला सहित अन्य कलाओं की शिक्षा राजकुमारों को भी दी जाती थी। महाभारत की कथा में अज्ञातवास की अवधि में अर्जुन ने बृहन्नला के रूप में विराट की राजकुमारी उत्तरा को नृत्य सिखाया था। कृष्ण को सभी चौंसठ कलाओं में निपुणता प्राप्त थी तथा भीम पाककला में निपुण थे।

भारत की प्राचीन कलाएँ आधुनिक युग में भी पूरी दुनिया के लिए कौतूहल एवं जिज्ञासा का विषय हैं। प्राचीन काल में भारत के मंदिरों में देवदासियाँ रखने की प्रथा थी। देवदासियों का कार्य अपने नृत्य द्वारा देवताओं को प्रसन्न करना होता था। व्यावहारिक धरातल पर ये देवदासियाँ मंदिरों के पुरोहितों, संरक्षकों एवं जमींदारों की दासी हो जाती थीं, जिनका निरन्तर यौन-शोषण होता था। इन नृत्य करने वाली स्त्रियों को 'सादिर' या 'दासीअट्टम' कहा जाता था। देवदासियों के जमींदारों-संरक्षकों से जो पुत्र उत्पन्न होते थे वे 'नटुआर' कहलाते थे। तमिलनाडु में नटुआरों से ही पारंपरिक नृत्य 'दासीअट्टम' सीखकर उसे 'भरतनाट्यम' का नाम दिया गया है। ध्यान देने वाली बात यह है कि 'भरतनाट्यम' शब्द का पहली बार प्रयोग 1930 के आसपास हुआ। भरतनाट्यम के प्रवर्तकों का कहना था कि यह नृत्य भरतमुनि के नाटयशास्त्र पर आधारित है, किंतु इस दावे में सत्यता बहुत कम जान पड़ती है। 'दासीअट्टम' को भरतनाट्यम बनाकर प्रचारित करने का सर्वप्रथम श्रेय रुक्मणी देवी अरुंदेल को जाता है जिन्होंने 1936 में चेन्नई में 'कलाक्षेत्र' नामक स्कूल खोलकर भरतनाटयम की औपचारिक शिक्षा देनी आरम्भ की। आज भरतनाट्यम की नृत्यकला अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है तथा असंख्य स्त्रियों की अस्मिता एवं आजीविका का स्रोत बनी हुई है।

आधुनिक रंगमंच की शुरुआत में महिलाओं की भूमिका सम्मानजनक नहीं थी। पितृसत्तात्मक समाज ने महिलाओं को इस रंगमंच की दुनिया से बाहर ही रखा था। समाज की इस संकीर्ण सोच से जूझते हुए महिलाओं ने अपनी लड़ाई दो मोर्चों पर एक साथ लड़ी। एक मोर्चा उसका अपना परिवार था तो दूसरा उसका समाज। जब पारसी रंगमंच का भारत में प्रवेश हुआ था तो नाटकों में स्त्रियों की भूमिका पुरुष पात्र ही निभाते थे। यह सिलसिला बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों तक चलता रहा। उस समय तक रंगमंच और सिनेमा की दुनिया में प्रवेश करने वाली स्त्रियों को समाज सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता था। धीरे-धीरे स्त्रियों का संघर्ष रंग लाया और उसी का यह सुखद परिणाम है कि आज वे रंगमंच की दुनिया में बतौर निर्देशिका, लेखिका, अभिनेत्री, गायिका आदि असंख्य भूमिकाओं में सफल हो रही हैं। 1942 में 'इप्टा' और 1944 में 'पृथ्वी थिएटर' जैसी नाटय संस्थाओं के स्थापित होने के पश्चात् भारत की नाटयकला को एक नयी दिशा और गति मिली। 1950-60 के दशकों में जनवादी नाटयसमूहों ने स्त्री विषयक मुद्दों को बड़ी गंभीरता और जोर-शोर से उठाया।

1970 का दशक वैश्विक स्तर पर आंदोलनों का दशक रहा। विभिन्न स्त्रीवादी संगठनों ने स्त्री-अधिकारों की लड़ाई लड़ने में बड़ी भूमिका निभायी। 1970-80 के दशक में जब बड़े पैमाने पर नाट्यमंचों की स्थापना हो रही थी तब इन आंदोलनों के दबावस्वरूप स्त्रियों को रंगमंच के केंद्र में आने के अवसर प्राप्त होने लगे। इस प्रकार पुरातन नाट्यकला की विकसित दुनिया में पैठ बनाती हुई स्त्रियों ने अपने कौशल और प्रतिभा का निरन्तर विकास किया। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रंगमंच की जो दुनिया उनके लिए वर्जित थी उसी का 'टूल' के रूप में प्रयोग स्त्रियों ने अपने अधिकारों की लड़ाई को जीतने के लिए भी किया। इस क्षेत्र में चर्चित नामों में शमा जैदी, शौकत कैफी, डॉ प्रतिभा अग्रवाल, जोहरा सहगल, डिंपी मिश्र और रमा

वैद्यनाथन आदि कलाकारों के योगदान उल्लेखनीय हैं।

सृष्टि के निर्माण में स्त्री रचनात्मक शक्ति का प्रतीक मानी गयी है। किंतु जैसे-जैसे पितृसत्तात्मक समाज का निर्माण होता गया वह पुरुष वर्चस्ववाद का क्रमशः शिकार होती गयी। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि सदियों तक स्त्री को दासता का दंश झेलना पड़ा है। इसकी ओर संकेत करते हुए कामायनी के 'लज्जा सर्ग' में प्रसाद लिखते हैं.

यह आज समझ तो पाई हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँ।
अवयव की सुन्दर कोमलता,
लेकर मैं सबसे हारी हूँ।[3]

स्त्री के समर्पण व त्याग-तप का उद्घाटन करते हुए वे आगे लिखते हैं-

क्या कहती हो ठहरो नारी!
संकल्प अश्रुजल से अपने।
तुम दान कर चुकी पहले ही,
जीवन के सोने से सपने।[4]

आधुनिक युग में आकर अब इतिहास ने करवट बदल लिया है। स्त्री को अबला, कामिनी और भोग्या कहकर अब उसके अस्तित्व को सीमित नहीं किया जा सकता। इस उपलब्धि तक पहुँचने के लिए पूरे विश्व में एक लम्बी लड़ाई लड़ी गयी है। फ्रेंच रिवॉल्यूशन की एक बड़ी ख़ासियत यह भी थी कि इसमें स्त्रियों की बड़े पैमाने पर भागीदारी दर्ज हुई थी। 1792 में ब्रिटिश राइटर मेरी वॉल्ट्सनक्राफ्ट की पुस्तक 'अ विंडिकेशन ऑफ द राइट ऑफ वुमन' प्रकाशित हुई थी जिसमें महिलाओं का शोषण करने वाले पुरुषप्रधान समाज पर असंख्य सवालों की बौछार की गयी थी। इंग्लैंड के लेखक जॉन स्टूअर्ट मिल ने भी स्त्री-अधिकारों की आवाज बुलन्द करते हुए 1861 में एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक था 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमन'। वे उस समय इंग्लैंड के मेंबर ऑफ पार्लियामेंट भी थे। इस गंभीर समस्या को उन्होंने पार्लियामेंट में भी बार-बार उठाया। भारत में स्त्री-सुधारों की शुरुआत नवजागरण के साथ हुई। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसॉफिकल सोसायटी एवं रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाओं ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य किये। स्त्री-अधिकारों की लड़ाई आज भी बदस्तूर जारी है और इस दिशा में उल्लेखनीय सफलता भी प्राप्त हुई है। वर्तमान समय में भारतीय महिलाएँ अपने देश की पुरातन कलाओं के विकास एवं प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। वे कला के विभिन्न क्षेत्रों में नित्य सफलता के शीर्ष पर पहुँच रही हैं। कला के क्षेत्र में वे अपने कौशल का द्वारा ख्याति, धन, प्रतिष्ठा सब कुछ अर्जित कर रही हैं।

कला के जिन क्षेत्रों में आज महिलाओं का कौशल विकास शीर्ष पर है उनका भी संक्षिप्त उल्लेख यहाँ आवश्यक है। नृत्य कला के क्षेत्र में मल्लिका साराभाई, मालिनी साराभाई, सोनल मानसिंह आदि का योगदान अविस्मरणीय है। वाद्यकला के क्षेत्र में सितारवादिका अनुपमा भागवत, वीणावादिका जयन्ती कुमारेश, वायलिन-वादन में नंदिनी और रागिनी शंकर, मृदंगम-वादन में रंजना स्वामीनाथन आदि की भूमिका सराहनीय है। वास्तु/स्थापत्य कला के क्षेत्र में आभा नारायण लाम्बा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने संस्कृति पुरस्कार के साथ कई अमेरिकी पुरस्कार और लगभग नौ यूनेस्को एशिया पेसिफिक अवॉर्ड प्राप्त किये हैं। शीला श्रीप्रकाश ने इस क्षेत्र में दर्जनों प्रोजेक्ट पूरे कर लिये हैं। विश्व के सौ सबसे बड़े वास्तुकारों में इनका नाम दर्ज है। गायन के क्षेत्र में गिरजा देवी, सुमन कल्याणपुर, शोभा गुर्टू, लता मंगेशकर, आशा भोंसले इत्यादि का योगदान सर्वविदित है। वस्त्र-आभूषण सज्जा जिसे आज के युग में हम फैशन डिजाइनिंग के रूप में देख सकते हैं। इस कला के क्षेत्र में प्रमुख हस्तियों में रितु कुमार, रितु बेरी, नीता लुल्ला, मोनिशा जयसिंह, सुरीली गोयल और पूजा नायर पूरी दुनिया में अपने कौशल का लोहा मनवा चुकी हैं। पाककला के क्षेत्र में बानी नंदा का नाम उल्लेखनीय है जो केक बनाने में विश्व प्रसिद्ध हैं। मेघा कोहली, जिन्होंने ओबरॉय ग्रुप ऑफ होटल्स के चीफ शेफ से आगे तक की यात्रा पूरी की है। ऋतु डालमिया जो दिल्ली में 'कैफे दिवा' नाम से एक सफल रेस्टोरेंट चलाती हैं, और इस क्षेत्र में वे एक बड़ा नाम बन चुकी हैं। चित्रकला में अमृता शेरगिल, मीना मुखर्जी, अर्पिता सिंह तथा रंगोली चित्रकला में शान्ति श्रीधरम और माहेश्वरी रमेश की भूमिका अग्रणी रही है। योग-व्यायाम कला में नताशा नोयाल, अनुप्रिया कपूर, श्वेता देव एवं ऐश्वर्या निगम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। युद्धकला आज के आधुनिक दौर में सैन्य कला में परिवर्तित हो चुकी है। इंडियन एयरफोर्स में अपने कौशल का परचम लहराने

वाली महिलाओं में पुनीता अरोड़ा, प्रिया झींगन, मिताली मधुमिता आदि के नाम भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। प्राचीन काल में नौका, रथ आदि आवागमन के साधनों का निर्माण कला के अंतर्गत ही आता था। आज के युग में ये कलाएँ अभियंत्रण की श्रेणी में आ चुकी हैं। और इन क्षेत्रों में भी महिलाओं ने सराहनीय कार्य किये हैं।

प्राचीन युग की अनेक कलाएँ आज विकसित होकर उद्योग-धंधों में समाविष्ट हो चुकी हैं। 21वीं सदी का युग कारपोरेट-संस्कृति का युग है। यहाँ भी पहुँचकर भारतीय महिलाओं ने न केवल अपनी आत्मनिर्भर छवि गढ़ी है बल्कि अपने कौशल और नेतृत्व-क्षमता का सर्वत्र लोहा भी मनवाया है। फिक्की की पूर्व अध्यक्ष ज्योत्सना सुरी जो होटल-उद्योग से जुड़ी हैं, महिला-कौशल-विकास की ज्वलंत उदाहरण बन चुकी हैं। उनका मानना है कि वे सिर्फ होटलों में नहीं उपलब्धियों के निर्माण में विश्वास करती हैं। वे अपनी पहलों में स्थानीय लोगों विशेषकर महिलाओं, उनकी हस्तशिल्प कला, संस्कृति, एवं भोजन को शामिल करती हैं और आर्थिक प्रगति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उन्हें प्रशिक्षण एवं रोजगार देती हैं। सफल महिला उद्यमियों में प्रसिद्ध नाम प्रिया पॉल, राधा भाटिया, मल्लिका श्रीनिवासन आदि के भी हैं।

इतनी उपलब्धियों के बावजूद भी देश में व्यापक स्तर पर महिलाओं की स्थिति अभी भी संतोषजनक नहीं है। एक अध्ययन के अनुसार देश में महिला साक्षरता-दर लगभग 70.3% है, जबकि पुरुष साक्षरता-दर 84.7% है। विश्वबैंक की एक रिपोर्ट कहती है कि भारत में कुल महिलाओं में से केवल 27% महिलाएँ ही कामकाजी हैं। शहरी महिलाओं की तुलना में ग्रामीण महिलाएँ अधिक कामकाजी हैं। पढ़ी-लिखी महिलाओं में से आज भी 50% महिलाएँ रसोई-चौके तक ही सीमित हैं। पड़ोसी देश नेपाल से भी हमें बहुत कुछ सीखना चाहिए जहाँ लगभग 80% महिलाएँ कामकाजी हैं। राहत की बात यह है कि हमें वस्तुस्थिति का बोध हो रहा है। अनेक स्तरों पर महिलाओं के कौशल-विकास की दिशा में प्रयास भी चल रहे हैं। देश में लगभग 450 ऐसे रोजगार हो सकते हैं जो महिलाओं के कौशल प्रशिक्षण पर केंद्रित हैं। इनमें असंख्य ऐसे क्षेत्र हैं जो पारम्परिक कलाओं से जुड़े हुए हैं। वस्त्र मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए 'महिला समर्थ योजना' चलायी जा रही है, जिसमें उन्हें टेलरिंग, कारीगरी इत्यादि के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। रेल मंत्रालय द्वारा पर्यटन एवं आतिथ्य ट्रेनिंग का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। बाल एवं महिला विकास मंत्रालय द्वारा महिला कौशल विकास हेतु चलायी जा रहीं अनेक योजनाएँ इस दिशा में सराहनीय हैं। कौशल-विकास और उद्यमिता मंत्रालय द्वारा कृषि, बागवानी, हथकरघा, कशीदाकारी, हस्तशिल्प, यात्रा-पर्यटन आदि के क्षेत्र में किए जा रहे कार्य उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार जिन परम्परागत कलाओं के क्षेत्र में महिलाओं के कौशल विकास की अधिक संभावना है और जिसमें अधिक कार्य हो रहा है उनमें प्रमुख हैं-सिलाई-कढ़ाई, ब्यूटीथेरेपी, आभूषणों का हस्तशिल्प, योग इंस्ट्रक्टर का प्रशिक्षण, कालीन-बुनाई, पर्यटकों के लिए होम स्टे एवं आतिथ्य का प्रशिक्षण एवं कृषि कार्यों का प्रशिक्षण, बढ़ई का कार्य, योग-व्यायाम का प्रशिक्षण आदि।

गाँधीजी ने शिक्षा के क्षेत्र में दो महत्त्वपूर्ण बातों पर अधिक जोर दिया था। एक-शिक्षा को कौशल-विकास से जोड़ने पर और दूसरा-स्त्री पुरुष को समान रूप से शिक्षा का अवसर देने पर। उन्होंने साफ कहा था कि हमारी शिक्षा ज्ञान, भावना और कर्म पर आधारित होनी चाहिए। आज स्त्रियों द्वारा अपने कला-कौशल और प्रतिभा के बल पर अनेक क्षेत्रों में नये-नये कीर्तिमान स्थापित हो रहे हैं। इस संघर्ष-यात्रा में उन्हें अभी भी असंख्य मुकाम हासिल करने हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार महादेवी वर्मा के शब्दों में यदि कहें तो-'तू न अपनी छाँह को अपने! लिए कारा बनाना। जाग, तुझको दूर जाना।' महिलाओं के सशक्तीकरण एवं उनके कौशल-विकास का यज्ञ अभी पूरा नहीं हुआ है। अभी भी इस दिशा में बहुत संघर्ष बाकी है। दिनकर के शब्दों में-

समर शेष है इस स्वराज को सत्य बनाना होगा,
जिसका है यह न्याय उसे सत्वर पहुँचाना होगा;
धारा के मग में अनेक पर्वत जो खड़े हुए हैं,
गंगा का पथ रोक इंद्र के गज जो अड़े हुए हैं,
कह दो उनसे झुके अगर तो जग में यश पायेंगे,
अड़े रहे तो ऐरावत पत्तों से बह जाएंगे।[5]

समग्रत: पारम्परिक कलाओं की महत्ता एवं उपयोगिता आज और अधिक बढ़ चुकी है। प्राचीन काल से लेकर

आधुनिक काल तक कलाएँ न केवल हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही हैं बल्कि इनके माध्यम से स्त्रियों ने अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाने के साथ एक आत्मनिर्भर छवि भी गढ़ी है। देश को यदि सही अर्थों में आत्मनिर्भर बनना है तो इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए उसे स्त्रियों के स्वावलम्बन के मार्ग से होकर ही गुजरना होगा।

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग,
श्यामलाल कॉलेज (सांध्य),
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ई-मेल-raidranil14@gmail.com

सन्दर्भ सूची

1. ए.एल. बाशम, अद्‌भुत भारत (हिन्दी रूपान्तरण) शिवपाल अग्रवाल एण्ड कं., आगरा, 1992, पृष्ठ-292 ।
2. वही, पृष्ठ-319 ।
3. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं. 2015, पृष्ठ-104 ।
4. वही, पृष्ठ-106 ।
5. नन्दकिशोर नवल, दिनकर रचनावली-1, लोकभारती प्रकाशन, 2011, पृष्ठ-301 ।